मगसिर शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक २७-१२-१९७४, श्लोक-८-९, प्रवचन-१७

नारक, वह ऐसा मैं हूँ मानता है। नारकी में रहा है न अनन्त बार। मनुष्यपना तो अनन्त काल में मिले, अनन्त-अनन्त काल में। नारकीपना तो इससे असंख्य गुणा अनन्त बार मिला है। अनादि का है। वह जब नारकी का शरीर मिले, उसमें रहनेवाला आत्मा है, वह (अपने को) नारकीरूप मानता है। समझ में आया?

**आत्मा स्वयं नरादिरूप नहीं;... नारकी के शरीर में रहनेवाले को। आत्मा स्वयं नरादिरूप नहीं;...** भाषा बदली लगती है, नहीं? नरादि। नरकादि चाहिए। यह **कर्मोपाधि बिना वह स्वयं होता नहीं।** क्या कहते हैं? नारकी स्वयं है। यह शरीर नहीं अभी। अन्तर उदयभाव के कारण नारकी गति मिलती है, उसे अज्ञानी अपना मानता है। नारकी की गति है, ऐसा कोई आत्मा का स्वभाव नहीं कि नारकीरूप से उस रूप हो। परन्तु पर्याय में वह भाव है। समझ में आया? द्रव्य, गुण और पर्याय। नारकी की गति जो है, ऐसा कोई गुण नहीं कि नारकी की गतिरूप जीव हो। परन्तु नारकी की गतिरूप होना, ऐसा उसकी पर्याय का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय का धर्म है, गुण का धर्म नहीं। बापू! वस्तु ऐसी सूक्ष्म है। इसने तत्त्व को समझने के लिये प्रयत्न किया ही नहीं। ऐसा का ऐसा अन्ध दौड़ से संसार के काम में फँसकर हमने यह किया और हमने कमाया और यह किया। यह सब मिथ्यात्व का सेवन है। और त्यागी होकर आवे तो उसे यह क्रिया मैं करता हूँ, यह मेरी क्रिया दया की और दान की, व्रत की, यह विकल्प है। उसका वह जीव पर्याय में कर्ता है, गुण नहीं।

**तत्त्वतः, अर्थात् परमार्थ से वह ( वैसा ) नहीं,...** नारकीपना या मनुष्यपना... फिर नीचे लेंगे। **कर्मोपाधि बिना वह स्वयं होता नहीं। किस प्रकार? तत्त्वतः, अर्थात् परमार्थ से वह ( वैसा ) नहीं, किन्तु व्यवहार से हो...** पर्याय में है, होता है इसलिए। पर्याय में नरकगति की योग्यता से पर्याय में है। उसका यह स्वभाव नहीं। आहाहा! **जीव की मनुष्यादि पर्याय, कर्मोपाधि से हुई हैं।** अब यह मनुष्यपना लिया। यह मनुष्य (शरीर) तो जड़ है यह तो। परन्तु अन्दर मनुष्यगति की योग्यता जो है, वह कर्म के

निमित्त की उपाधि है, अपनी योग्यता से। मनुष्यपना है, वह कलंक है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। वह मनुष्यपना उसकी पर्याय में-अवस्था में होने के योग्य है। वह कर्म के निमित्त से उपाधि है। उपाधि अर्थात्? अपने भाव में निमित्ताधीन होने से। आहाहा! **मनुष्यादि पर्याय, कर्मोपाधि से हुई हैं। उस ( कर्मोपाधि ) के निवृत्त होने पर / मिटने पर, वे ( पर्यायें ) निवृत्त होती होने से,...** जाता है। मनुष्यगति आदि जो है योग्यता वह आत्मा के स्वभाव का भान होने पर वह छूट जाती है। सिद्ध होने पर वह रहती नहीं। **वास्तव में ( वे पर्यायें, जीव की ) नहीं — ऐसा अर्थ है।**

**तब परमार्थ से वह ( आत्मा ) कैसा है?** भगवान आत्मा। कि **वह अनन्तानन्तधीशक्ति...** है न सामने? अन्तिम पद है। **अनन्तानन्तधीशक्ति...** आत्मा तो अनन्त-अनन्त ज्ञान की शक्ति, वह तत्त्व है। आहाहा! ज्ञान-समझणस्वरूप वह अनन्त-अनन्त धी—बुद्धि। बुद्धि अर्थात् ज्ञान यहाँ लेना है। अनन्त-अनन्त ज्ञानशक्तिवाला आत्मा है। आहाहा! उसे रागवाला कहना और नारकीगति कहना, वह सब पर्याय की योग्यता से निमित्ताधीन हुई दशा से है। आहाहा! समझ में आया? **वैसा वह किस प्रकार जाना जा सकता है—( अनुभव किया जा सकता है )?** भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान की शक्तिवाला तत्त्व है। कैसे पहिचाना जाये?

**वह स्वसंवेद्य है।** आहाहा! अन्तर में स्व अर्थात् अपने ज्ञान से सं-प्रत्यक्ष वेदन किया जा सकता है, ऐसी वह चीज़ है। समझ में आया? तब उसे धर्म होगा। क्या कहा यह? **स्वसंवेद्य है।** आत्मवस्तु इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? अलिंगग्रहण में आया है न पहले में? भगवान आत्मा भावेन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। आहाहा! जड़ इन्द्रिय तो निमित्त है। परन्तु भावेन्द्रिय जो क्षयोपशम विकास, एक-एक विषय को जाननेवाली योग्यता, ऐसी भावेन्द्रिय से भी आत्मा जाना जा सकता है या भावेन्द्रिय से जानता है, वह आत्मा - ऐसा नहीं है। कठिन बात! समझ में आया? यह आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने कहा जो आत्मा, इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने कहा आत्मा, वह आत्मा नहीं। यहाँ तो तीर्थंकरदेव परमेश्वर परमात्मा ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा इन्द्रिय से जाने, ऐसा वह आत्मा नहीं है। आहाहा! स्वसंवेदन है न?

दूसरे प्रकार से कहें तो वह भावेन्द्रिय के क्षयोपशम से जितना जानने का होता है, वह आत्मा का ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? स्वसंवेद्य कहा न? अलिंगग्रहण में भी ऐसा लिया है। अपने स्वभाव से ही ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वह यह बात है। आहाहा! अरे! इसने अपनी चीज़ क्या है, यह कभी जाना नहीं और दरकार की नहीं। मरकर ऐसा का ऐसा ढोर और मनुष्य, कौआ और कुत्ता (हुआ)। समझ में आया? यह सब पैसेवाले कौवे, कुत्ते में जानेवाले हैं, हों! जिसने कुछ धर्म क्या चीज़ है, यह सुना नहीं। और सुने तो जँचा नहीं। आहाहा! ऐई! सोहनलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

क्योंकि आत्मा वस्तु जो है, वह इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। गजब बात है! इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा तो नहीं परन्तु इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। आहाहा! गजब बात है। यह तो स्वसंवेदन से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। आत्मवस्तु, यह तत्त्व कहा है। यह कहते हैं कि वह तो स्वसंवेद्य है। अपने ज्ञान के स्वभाव से प्रत्यक्ष वेदन में-अनुभव में आये, ऐसा वह आत्मा है। समझ में आया? परमेश्वर का ऐसा कथन है। लोगों को कुछ खबर पड़ती नहीं। बिना भान के चलते हैं ऐसे के ऐसे। धर्म के बहाने यह दया पालन की, व्रत पालन किये, भक्ति की। कहते हैं कि इन्द्रिय द्वारा, भावेन्द्रिय द्वारा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो स्वसंवेद्य है। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, भाई!

**निरुपाधिकरूप ही वस्तु का स्वभाव कहलाता है।** यह तो उपाधिरहित चीज़ है। तब कोई कहता है, उसमें राग, द्वेष, पुण्य-पापभाव होते हैं न? होते हैं न? वह होते हैं, वह पर्याय में उपाधि निमित्त के आधीन हुई दशा है। उसका कोई गुण नहीं उपाधि होना, राग होना। समझ में आया? यह ९५ में आया था न? भाई! ९५वीं गाथा। प्रत्येक द्रव्य में भोक्तागुण है। वह भोक्तागुण निर्मलरूप से परिणमे, वह भोक्तागुण है। वह भोक्तागुण राग को भोगे, ऐसा गुण उसमें नहीं है।

आत्मा में एक भोक्तागुण है। परन्तु वह भोक्तागुण द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्यापता है। उस भोक्तागुण की परिणति शान्ति को वेदती है, शान्ति को भोगे, ऐसा

उसका गुण है। आहाहा! यह राग-द्वेष को वेदे और करे, ऐसा कोई गुण नहीं है। अज्ञानी को अकेली पर्यायबुद्धि से राग का करना और भोगना, वह मिथ्यात्वभाव में जाता है। ज्ञानी को... आहाहा! स्वस्वभाव का वेदन, द्रव्य के स्वभाव को स्व-अपने से वेदे, वह अपना स्वरूप है। परन्तु साथ में ज्ञानी को भी राग का करना और भोगना है, वह गुण नहीं है। परन्तु उस पर्याय की स्थिति में वह खड़ा होता है, जिसे ज्ञानी जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बहुत... मस्तिष्क को... व्यापारीवाले को तो यह धन्धा लिया और दिया, उसमें बहुत मस्तिष्क (चलाना नहीं पड़ता)। बापू! यह मार्ग वीतराग का कोई अलौकिक मार्ग है।

सवेरे आया नहीं था? जो द्रव्य वह गुण, गुणरूप से गुण, पर्याय में गुण। यह... यह पर्याय कौन सी? निर्मल। ४७ शक्ति में यह लिया है न? विकार नहीं लिया। क्योंकि शक्ति का वर्णन है न! जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, दृशि, ज्ञान, सुखशक्ति। यह सुखशक्ति वह द्रव्य सुखरूप, गुण सुखरूप, पर्याय सुखरूप। ऐसा उसका गुण है। यह वह स्वसंवेद्य से ज्ञात होता है, ऐसा उसका गुण है। अपने आनन्द के वेदन से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। राग और द्वेष और कषाय के विकल्प होते हैं परन्तु वह कोई गुण की दशा नहीं है। यह वर्तमान पर्याय में दोष की दशा है। उस दोष का कर्तापना और भोक्तापना वह पर्यायदृष्टि में पर्याय में है। आहाहा! पर्याय क्या और द्रव्य क्या? अब यह तो कभी (सुना भी नहीं था)। वह तो दया पालन की, इच्छामि ... आता है या नहीं? इच्छामि किया नहीं? सामायिक की है? सामायिक के पाठ में आता है न। इच्छामि... आहाहा!

कहते हैं कि यह जीव तो स्वसंवेद्य है। आहाहा! यह उसका गुण है। आनन्द का वेदना और स्वयं से वेदना, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? विकार को वेदना, उसका गुण नहीं। परन्तु जिसे द्रव्यस्वभाव के वेदन का भान हुआ है, उसके पर्याय में राग का करना और भोगने का, वह पर्याय में है, ऐसा जानता है। मेरा कोई गुण नहीं कि मैं विकार करूँ और विकार भोगना। आहाहा! परन्तु पर्याय में निर्बलता के कारण रागरूप परिणमता है, दुःखरूप परिणमता है, यह पर्याय का धर्म है। पर्याय में अशुद्ध

धर्म इसका है न यह ? छठी गाथा में आता है। अशुद्ध कर्म भी इसने नहीं धार रखा है, छठी गाथा में। बात तो बहुत अलौकिक! परन्तु बात ऐसी है। आहाहा!

यहाँ तो कर्तागुण है जीव का, परन्तु वह कर्तागुण क्या करे ? कर्तागुण है, वह कर्ता द्रव्य, कर्ता गुण, कर्ता पर्याय। जैसे सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् पर्याय। इसी प्रकार कर्ता द्रव्य, कर्ता गुण, कर्ता पर्याय। वह कर्ता पर्याय कैसी ? निर्विकारी पर्याय की कर्ता पर्याय ऐसी। समझ में आया ? यह यहाँ निर्विकारी पर्याय द्वारा वेदन में आये, ऐसा जीव है, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! सब फेरफार। इसने मनुष्य के भव में यदि इस चैतन्य को इस प्रकार नहीं समझा, हो गया व्यर्थ अवतार। ढोर जैसा। मरकर ढोर होनेवाला है। पशु और कौआ। ऐई! आहाहा! वहाँ कहीं था ? लवथव। लवथव। लववु अर्थात् बोलना और थव अर्थात् जिसके साथ बात करें न, उसे महिमा देकर बात करे, वह लवथव कहलाता है। हमारे काठियावाड़ में लवथव कहते हैं। तुम्हारे क्या लवथव कहा न ?

**मुमुक्षु :** लाला...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लाला... बस! इसी बात में ऐसा मानो दूसरे को महत्ता दे और दूसरे से महत्ता लूँ। ऐसी यह शैली लवथव की। वहाँ लवथव चले, ऐसा नहीं अन्दर। आहाहा!

कहते हैं कि **वह स्वसंवेद्य है।** आहा! इस भगवान के कारण ज्ञात हो आत्मा, ऐसा नहीं है। गुरु के कारण ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं है। यह दशा कषाय की मन्दता के शुभभाव, उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? यह दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत और तप के भाव, वह राग है, विकल्प है। उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! इसकी खबर भी नहीं होती कि क्या है और कैसे होता है ? आहाहा!

कहते हैं कि वह तो **वह स्वसंवेद्य है। निरुपाधिकरूप ही वस्तु का स्वभाव कहलाता है।** आहाहा! इसका अर्थ तो यह आया न ? सवेरे कहा था गुण का, भाई! आनन्द द्रव्य, आनन्द गुण, आनन्द पर्याय। आनन्द का विस्तार है। उसका अर्थ यह हुआ कि आनन्द की दशा के परिणमन में उसके द्रव्य के लक्ष्य से उसका परिणमन होता है।

कषाय की मन्दता और निमित्त, वह तो उसमें अभाव है। आहाहा! व्यवहार से निश्चय होता है, यह अभाव है, कहते हैं निमित्त से यहाँ कुछ सम्यग्दर्शन और धर्म की पर्याय होती है, उसका तो इसमें अभाव है।

इसका भाव तो अपने में आनन्द है—वस्तु में, गुण में और पर्याय में, तो उस आनन्दगुण के लक्ष्य से आनन्द की परिणति जो होती है, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसकी आनन्द की परिणति के लिये आनन्द द्रव्य और आनन्द गुण का आश्रय चाहिए, परन्तु आनन्द की परिणति के लिये राग की मन्दता और निमित्त का आश्रय चाहिए, यह वस्तु में नहीं है। आहाहा! १०७ गाथा में तो गजब किया है! सवेरे चला था न! बहुत सरस। सन्तों ने जगत को धारकर ऊँचा लिया है। आहाहा!

भाई! तू कहाँ है? यह तू राग में नहीं, शरीर में नहीं, वाणी में नहीं, कर्म में नहीं। आहाहा! तू है, वह तो आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर स्वभाव है। तो वह जो भरपूर तत्त्व है, वहाँ नजर करने से वह दशा आवे, ऐसी है। समझ में आया? ...! व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, वह तो रहता नहीं। एकान्त हो जाता है। प्रभु! ऐसे तू कहे वह सही तेरी दृष्टि से। वस्तु ऐसी है। भगवान ने ऐसा कहा है, वस्तु ऐसी है।

तुझे यदि शान्ति और रागरहित दशा धर्म की, जिससे जन्म-मरण का नाश हो, वह दशा चाहिए हो तो वह दशा, द्रव्य और गुण में शक्तिरूप से है। द्रव्य में शक्तिरूप से और गुण में शक्तिरूप से। आहाहा! इससे तुझे द्रव्य का आश्रय करने से-वस्तु का आश्रय करने से गुण का आश्रय उसमें इकट्ठा आ गया। पर्याय में वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान, वीतरागी चारित्र का अंश हो, वह धर्म है। उसे राग की मन्दता और निमित्त की अपेक्षा हो तो वह हो, ऐसा नहीं है। उसे तो त्रिकाली भरपूर द्रव्य और गुण भरपूर है, वह है तो यह होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी व्याख्या यह कैसी! बापू! वीतराग का मार्ग। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। ऐसा नहीं कहा, राग से वेदना, वह वस्तु का स्वभाव नहीं। राग को भोगना... यह जड़ को भोगना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। शरीर को और स्त्री को और स्त्री के शरीर को या लक्ष्मी को या दाल-भात को भोगना, वह तो आत्मा में अज्ञानभाव से भी नहीं। वह तो परवस्तु है।

परन्तु अन्तर में राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्पों को सेवन करना, भोगना, ऐसा कोई गुण नहीं है। इसलिए गुण और द्रव्य की दृष्टि बिना जो कुछ राग और द्वेष का विदेना होता है या करना होता है, वह सब मिथ्यात्व में जाता है। आहाहा! सुजानमलजी! ऐसी बात है। निर्णय करना न, निर्णय तो करे।

इसमें यह एकान्त ही है। समझ में आया? आत्मा में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। तो वह पर्याय है तो उसमें गुण है और द्रव्य में भी वह है। वह शक्ति द्रव्य में है, वह गुण में है, पर्याय में ऐसी है। वह शक्ति राग में नहीं, वह शक्ति निमित्त में नहीं कि जिससे वहाँ आवे। जयन्तीभाई! आहाहा! वह तो स्वसंवेद्य है। आहाहा! यह वस्तु का स्वभाव कहलाता है। आहाहा!

**कर्मादि का विनाश होने पर, अनन्तानन्त ज्ञान-शक्तिरूप से परिणत आत्मा,...** पहला तो सम्यग्दर्शन में-सम्यग्ज्ञान में शुरुआत की धर्मदशा में वस्तु के स्वभाव का आश्रय लेकर जो दशा होती है, वह अल्प स्वसंवेदन की, अल्प आनन्द और शान्ति की वेदन दशा (होती है)। परन्तु **अनन्तानन्त ज्ञान-शक्तिरूप से परिणत आत्मा,...** आहाहा! **स्वसंवेदन में ही वेदन किया जा सकता है।** वह पूर्ण केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द की दशा स्वसंवेदन से ही वेदन की जा सकती है। आहाहा! नीचे भी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, ऐसी जो धर्मदशा (प्रगट होती है), वह अपने स्वस्वभाव से ही वेदी जा सकती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म, इसलिए बेचारे पकड़ नहीं सके न, पश्चात् चल निकले-भक्ति में धर्म होता है, पूजा में धर्म होता, व्रत पालें तो धर्म (होता है)। वह व्रत तो सब विकल्प है। आहाहा! विकल्प है, वह कोई गुण नहीं कि जिस गुण का परिणमना विकल्प आवे। आहाहा! अपवास करना, यह सब विकल्प है, राग है। ऐसा कोई गुण नहीं कि पर्याय में वह राग आवे। आहाहा! तो उसकी दृष्टि द्रव्य और गुण पर नहीं है। उसे तो यह अपवास करूँ और यह व्रत पालन करूँ, ऐसी दृष्टि पर के ऊपर है। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है। उसे स्वसंवेदन धर्म नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि यह देह और इन्द्रियाँ जो निमित्त है जड़, वह तो एक ओर रखो, परन्तु भावेन्द्रिय का क्षयोपशम जो है, उसके द्वारा परपदार्थ का ज्ञान हो, वह

भी ज्ञान नहीं है। यह आ गया है पहले इसमें। आहाहा! समझ में आया? जड़ इन्द्रियाँ निमित्त, भावेन्द्रियाँ निमित्त। ऐसा तो अव्यक्त में भी कहा है न? क्षयोपशम से जाने, वह जीव का स्वभाव नहीं। अव्यक्त में। चारों ओर से बात लो। एक तत्त्व खड़ा होता है।

कहते हैं कि यहाँ ज्ञान का विकास वह पर्याय में है न? उस विकास से जितना परपदार्थ का जानना होता है, वह ज्ञान नहीं—वह सम्यग्ज्ञान नहीं। इसका अर्थ यह कि इन्द्रिय से जो जानने में आये, इतना सब मिथ्याज्ञान है। जिसमें स्व आत्मा न आया और अकेला पर का ज्ञान (हुआ), वह तो इन्द्रिय द्वारा हुआ। आहाहा! और उसमें उसे महिमा सेवन करनी है कि हमको बहुत ज्ञान है और बहुत उघाड़ है, आहाहा! मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ तो कहते हैं कि अनन्त-अनन्त ज्ञानशक्तिरूप से आत्मा भगवान, वह स्वयं शक्ति जो है, वह द्रव्य में है, गुण में है। उसका जहाँ स्वीकार हुआ... आहाहा! तब पर्याय में आया। एक दूसरी बात हुई वापस कि यह जो है अनन्त गुण अनन्त आनन्द आदि, वे हैं, ऐसा जब ज्ञान में आया और भान हुआ तब वह है—वह द्रव्य में है, गुण में है, पर्याय में है, ऐसा आया। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तब वह प्रतीति में आया। (नहीं तो) उसको है कहाँ वह? पर्याय में वस्तु जो है, वह तो दृष्टि में आयी नहीं। और है कहाँ आया? उसे तो वह पर्याय है, राग है, निमित्त है। बस! यह आया। आहाहा! लोगों को कठिन लगे, हों! सोनगढ़वालों ने समकित महँगा किया है, ऐसा (वे) कहते हैं। वस्तु ही ऐसी है, वहाँ क्या?

**मुमुक्षु :** वह तो होवे ऐसा कहे, सस्ता-महँगा क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सस्ता-महँगा क्या? आहाहा! समझ में आया?

**अनन्तानन्त ज्ञान-शक्तिरूप...** भगवान आत्मा ऐसा जिसे अन्तर में स्वीकार हुआ, उसकी दृष्टि निमित्त, राग और पर्यायबुद्धि से उठ गयी। आहाहा! ऐसा **आत्मा, स्वसंवेदन में ही वेदन किया जा सकता है।** देखा! .... पुस्तक मिली न अब? थी नहीं अभी तक। यह नवरंगभाई ने दी। इनने दी। लेकर जाना वहाँ। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा में यह शक्ति लो, सर्वज्ञशक्ति है न आत्मा में? वह सर्वज्ञशक्ति, वह द्रव्य; सर्वज्ञशक्ति, वह गुण और सर्वज्ञशक्ति पर्याय में परिणमे। पहले से पर्याय में सर्वज्ञशक्ति का पूर्ण रूप नहीं परिणमता। प्रतीति में-सम्यग्दर्शन में, वेदन में यह सर्वज्ञ द्रव्य, सर्वज्ञ गुण, उस प्रकार की श्रद्धा में सर्वज्ञपना प्रगट हुआ। ज्ञान में प्रगट हुआ कि यह सर्वज्ञ मैं हूँ। समझ में आया? इतना तो उसे वेदन उस समय अपने वेदने का जो गुण था, वह गुण यहाँ आकर परिणमित हुआ। अर्थात् वह स्वसंवेदन में आ गया। आहाहा! सूक्ष्म बहुत भाई इसमें! मार्ग तो यह है, भाई! अरे! चौरासी के अवतार में भटक-भटककर यह दु:खी है। सुखी मानता है भले परन्तु दु:खी है। आनन्द का स्वभाव उसने अन्तर में भरा आनन्द। वह आनन्द, दशा में न आवे तब दु:ख की दशा जो इसमें नहीं, ऐसी पर्यायबुद्धि से दु:खदशा को वेदता है। समझ में आया?

**संसार अवस्था में कर्मोपाधि से निर्मित होने से, उससे विपरीत परिणति का अनुभव होता है।** दो बातें हुईं। एक तो भगवान आत्मा द्रव्य और गुण में जो आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उसका जब स्वसंवेदन द्वारा स्वीकार हुआ, स्वसंवेदन ज्ञान के प्रत्यक्ष द्वारा उसकी अस्ति है, 'है' इतना बड़ा भगवान, ऐसी जो पर्याय में प्रतीति और ज्ञान हुआ, उससे स्वयं वेदन में आया। परन्तु अनादि से यह भान नहीं, इसलिए क्या होता है, कहते हैं। **कर्मोपाधि से निर्मित...** कर्म के निमित्त के आधीन हुई विकारी दशा। उससे विपरीत अर्थात् स्वभाव से विपरीत, उस परिणति का अनुभव होता है। अज्ञानी को किसका अनुभव है? स्त्री का, शरीर का, दाल-भात का, पैसे का, बँगले का है? वह तो जड़ पर है। आत्मा का है? या आत्मा की ओर तो झुका नहीं। आहाहा! उसे राग और द्वेष के दु:ख की दावानल की दशा का उसे अनुभव है। ऐसा कैसा? ऐई! किससे विपरीत कहा? स्वसंवेदन वेदन किया जा सकता है, उससे यह विपरीत।

संसारदशा में अनादि काल से इसे शुभ और अशुभराग का वेदन है या द्वेष का वेदन है या विषय की वासना की कल्पना का वेदन है। यह स्वभाव के वेदन से विपरीत वेदन है। समझ में आया? आहाहा! वे बेचारे दु:ख को वेदते हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यह सब सेठिया, अरबोंपति, बड़े राजा, यह देव दु:ख को वेदते हैं। क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसी जो शक्ति का भण्डार, उसे तो इसने खोला नहीं। उसमें तो इसका

स्वीकार नहीं। मात्र स्वीकार वर्तमान दशा का, राग का, पुण्य का, इसका और उसका। आहाहा! इसके वेदन में दु:ख की दशा है इसे। समझ में आया?

यह कर्म के निमित्त से। परन्तु कर्म से नहीं, हों! आहाहा! इसमें यह पर्याय की शक्ति है। पर्याय में, हों, वह। निमित्त के आधीन हुई और विकार को वेदता है। आहाहा! समझ में आया? इस विपरीत परिणति का अनुभव है। आहाहा! जिसमें परमात्मा स्वरूप से भगवान विराजमान है, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द और शान्त... शान्त... शान्तरस है। वह शान्तरस और आनन्द द्रव्य में है, गुण में है, उसका स्वीकार होने पर पर्याय में है और वह स्वीकार नहीं तब पर्याय में राग और द्वेष का दु:ख का वेदन है।

भजन में आता है न ऐसा? 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया रे। एक सुखिया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया रे।' आहाहा! चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, जिसने वहाँ नजर डालकर जिसने आनन्द को वेदन किया वह समकिती जगत में सुखी है। समझ में आया? आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया रे...' आहाहा! जिसने भगवान आत्मा आनन्द के नाथ को शोधकर, खोजकर पर्याय में प्रगट किया नहीं... आहाहा! वे सब प्राणी दु:खी हैं। पोपटभाई! दु:खी है? छह लड़के, दो करोड़ रुपये, दस-दस लाख की आमदनी हो तो भी दु:खिया? आहाहा! कहो, बाबूभाई! आहाहा!

भाई! शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति है, वह कहाँ तेरी है? उस चीज़ में तो तू अभावरूप है और दो चीज़ तुझमें अभावस्वभाव है। आहाहा! अब तुझमें भावरूप जो है, वह तो आनन्द और शान्ति और वह सुखरूप, वह भावरूप है। अब इस भाव का जो आश्रय लिया, तब तो आनन्द और शान्ति की पर्याय आवे, उसका वेदन है। उसका आश्रय नहीं लिया और निमित्त का आश्रय लेकर विकार उत्पन्न किया, वह विकार दु:ख का वेदन है। आहाहा! यह अरबी के खाता हो। क्या कहलाते हैं वे? अरबी के पत्ते नहीं होते? पतरवेलिया। चने का आटा डालकर बनाते हैं न? ... फिर तेल में तलते हैं। मैसूर के टुकड़े उठाता हो, उसके साथ यह डाले। कहते हैं कि दु:खी है, सुन न अब। उसका

वेदन नहीं उसे। वेदन में उसकी ओर के लक्ष्य से जो प्रीति उत्पन्न हुई कि यह ठीक, ऐसा राग का-दुःख का वेदन है। समझ में आया? सर्वज्ञ का मार्ग भाई अलौकिक है। 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जाणी,...' श्रीमद् ने १६ वर्ष में कहा है न? श्रीमद् राजचन्द्र। १६ वर्ष में। 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।' ...मोक्षमाला में है। आहाहा!

कहते हैं, जिसे भगवान आत्मा में शक्तियाँ और गुण जो पड़े हैं ध्रुव। और द्रव्य ध्रुव। उसमें अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है, उसका जिसने आश्रय लिया, उसे तो पर्याय में स्वसंवेदन आनन्द का वेदन है। और उसका जिसने आश्रय नहीं लिया और निमित्त तथा राग का आश्रय लेकर जो वेदन करता है, वह सब राग का, द्वेष का, दुःख का वेदन है। कहा न? **कर्मोपाधि से निर्मित...** निर्मायेल—रचित। **होने से, उससे...** इसलिए अर्थात् उस स्वभाव से **विपरीत परिणति का अनुभव होता है।** आहाहा!

**वैसा स्वसंवेद्य ( आत्मा ) भले हो, किन्तु वह कितने काल?** ऐसा प्रश्न करता है। आहाहा! **सर्वदा तो नहीं होता, कारण कि बाद में उसके रूप का नाश होता है। ( —ऐसी शङ्का का परिहार करते हुए ) कहते हैं...** शंका करता है। **कि उसकी ( आत्मा की ) स्थिति अचल है...** समझ में आया? है न नौवाँ पद? '**स्वयंवेद्योऽचलस्थितः**' अन्तिम पद है। आहाहा! भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! यह कोई ऐरे-गैरे का कथन नहीं है। इसके लिये कितनी तैयारी चाहिए! एक राज दरबार में जाना हो तो कैसी सभ्यता से, कैसे कपड़े से और कैसी शैली से जाता है! आहाहा! मूर्खों में भी जाना हो तो। वह राज दरबार मूर्खता से भरपूर है। यह तो तीन लोक के नाथ केवली परमात्मा... आहाहा! उनके कथन में जाना हो और उनके सन्देश को स्वीकार करना हो तो तैयारी बहुत चाहिए। आहाहा!

कहते हैं कि यह आत्मा की अचल स्थिति है। तू कहता है कि वह तो आत्मा का वेदन स्व से हो जाये तो कितना काल रहे? ऐसा कहते हैं। सदा तो न रहे। अरे! सुन न। यह **अनन्तानन्तधीशक्ति के स्वभाव के कारण, वह अचल स्थितिवाला है।** भगवान आत्मा ज्ञानशक्तिवाला अनन्तानन्त शक्ति, उसका स्वभाव ही अनन्तानन्त ज्ञान का स्वभाव,

ऐसी शक्तिवाला वह अनादि-अनन्त त्रिकाल है। और उस त्रिकाली तत्त्व का आश्रय लेकर वेदन हो, वह कायम रहेगा। वह दुःख का वेदन नहीं रहे (एकरूप से) कायम। वह क्षण-क्षण बदलता जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

**धीशक्ति के स्वभाव के कारण, वह अचल स्थितिवाला है।** यह तो फिर जरा स्पष्टीकरण किया है। **जो योग और सांख्यमतवालों ने मुक्ति के विषय में आत्मा की, उससे (मुक्ति से) प्रच्युति (पतन) सम्भव माना है,...** मुक्ति होकर फिर नाश होता है। अवतार धारण करे न... आता है न? अथवा मुक्त हो, इसलिए ज्ञान का नाश होता है। ज्ञान रहे तो उपाधि है, ऐसा कहते हैं। यह ऐसा नहीं है। वस्तु ज्ञानस्वभाव, शक्ति ज्ञानभाव, उसका वेदन आवे, वह ज्ञानभाव और शान्त वेदन। यह अचल स्थिति है, इसलिए वेदन भी अचल हो जाता है। आहाहा! ऐसी व्याख्या कैसी होगी? पोपटभाई! आहाहा!

वीतराग का दरबार है। वीतरागी भाव का वेदन, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! जिसे अकेले राग का, द्वेष का, संकल्प, विकल्प, विकार का वेदन है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! (इन्द्रिय) सुख का वेदनेवाला वह जीव नहीं है। अलिंगग्रहण में आता है न? आत्मा इन्द्रिय के विषय का भोक्ता नहीं। बारहवाँ बोल आता है। २०, कितने बोले हैं? २० हैं न? उनमें से १२वाँ है। अलिंगग्रहण। भगवान आत्मा इन्द्रिय के विषय का भोक्ता नहीं। आहाहा! इन्द्रिय के विषय को, राग को वेदे और आत्मा का वेदन न हो, वह जड़ है, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! ऐसा कठिन मार्ग, भाई!

**मुमुक्षु :** भगवान की...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान का विद्यालय है, बापू!....

कहते हैं, **जो योग और सांख्यमतवालों ने मुक्ति के विषय में आत्मा की,...** च्युति मानता है। फिर पतन मानता है। वहाँ से भ्रष्ट हो जाता है .... **उसके सम्बन्ध में (खण्डनस्वरूप) प्रमेयकमल-मार्तण्ड...** वह फिर ग्रन्थ का न्याय दिया। **न्यायकुमुदचन्द्र में मोक्षविचार प्रसङ्ग में विस्तार से कहा गया है।** यह ग्रन्थ हैं दो।

**भावार्थ - जिन नर-नारकादि पर्यायों को (जीव) धारण करता है, उन पर्यायोंरूप अपने को मानता है।** बस। हम दशाश्रीमाली बनिया, हम विशाश्रीमाली बनिया, हम

क्षत्रिय, हम ब्राह्मण। मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? जिस गति की जो पर्याय मिली, वही स्वयं मानता है। अरे! इसने अपनी दया नहीं की। अपनी दया, अर्थात्? कि जो अनन्त आनन्द और ज्ञान का स्वरूप है, जीवित ज्योति अन्दर, उसका स्वीकार न करके मैं राग और पुण्य और दया, दान के विकल्पवाला हूँ (-ऐसा माना), उसने अपनी दया नहीं पालन की। अपना जो जीवन जितना है, उतना न मानकर मैं रागवाला जीवन, द्वेषवाला जीवनवाला हूँ, यह आत्मा की उसने हिंसा की। अर्थात् कि उसने 'है', उसे 'नहीं' किया। आहाहा! समझ में आया? स्त्री, पुत्र, परिवार, पाँच-पाँच, पचास लाख की आमदनी हो, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ रुपये हों। बँगले ४०-४० लाख के हों। हम सुखी हैं। भगवान! तू आत्मा की हिंसा करता है। जिसमें आनन्द है, उसका तूने निषेध किया और जिसमें आनन्द नहीं, उसमें से आनन्द होता है, ऐसा तूने माना। आहाहा! नर, नारक पर्याय को जीव धारण करे। वस्तु में नहीं। पर्याय में है।

**उन पर्यायोंरूप अज्ञानी अपने को मानता है। जीव, वास्तव में उन पर्यायोंरूप नहीं है किन्तु वह स्वानुभवगम्य,...** आहाहा! आनन्दवाला, ज्ञानवाला, शान्तिवाला, आहाहा! **स्वानुभवगम्य, शाश्वत...** है। वह अचल स्थितिवन्त है। नित्यानन्द है। ध्रुव आनन्द है। आहाहा! उसका वेदन फिर ध्रुव के आनन्द का वेदन भी कायम टिक सकता है। मोक्षमार्ग में कायम टिक सकता है। मोक्ष में कायम रहते हैं न! फिर वह कुछ बदलता नहीं, कहते हैं। अचल वस्तु है, और उसका अनुभव पूर्ण हुआ वह ऐसा का ऐसा रहेगा। जैसे द्रव्य शाश्वत्, गुण शाश्वत्; वैसे अब पर्याय शाश्वत् हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

**अनन्तानन्त ज्ञान-वीर्यमय है।** अनन्त-अनन्त ज्ञान वीर्यमय है। यह तो सवेरे आया था न? वीर्य आत्मा, वीर्य गुण, वीर्य पर्याय। अपने वीर्य आया न इसमें। उसमें पुरुषार्थ शब्द है। गुजराती में पुरुषार्थ है। गुजराती में। यह हिन्दी में वीर्य प्रयोग किया है। यह गुण है सही न। पुरुषार्थगुण ऐसा पृथक् किया नहीं। वीर्य को ही पुरुषार्थ कहा है। आहाहा! वीर्य जो पुरुषार्थ आत्मा में गुण है, (वह) ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत् है। ऐसा जो वीर्यगुण द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में है। किसे? जिसने द्रव्य और गुण की नित्यता स्वीकार की उसे। समझ में आया?

...एक में आया था। विद्यानन्द को दिया न उपाध्याय पद? इसलिए उसके अन्दर... घर-घर में अब दीक्षा लोग लें, ऐसा करो। घर-घर में पण्डितों को मान दो, ऐसा था पहले। यह अब घर-घर में दीक्षा की बात करो। ऐसा कि लोग, जैसे लड़का न हो तो किसी का लेकर भी वंश रखते हैं। गोद बैठाते हैं न लड़के को? घर-घर में दीक्षा का कहो। अरे! प्रभु! पहले दीक्षा किसे कहना? भाई! समझ में आया? आहाहा! दीक्षा की शिक्षायें बहुत बड़ी हैं, भाई! शिक्षा, हों! शिक्षा नहीं। क्या कहा? यह शिक्षा-शिक्षा तो दण्ड है। और उसकी शिक्षा अर्थात् समझ। आहाहा! उस दीक्षा के स्वरूप को समझे नहीं, उसे शिक्षा है-दण्ड है। आहाहा! बापू! भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं। ऐसी महिमा हाथ में आयी नहीं और चारित्र और समकित है, ऐसा मान लिया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान परमानन्दस्वरूप अनन्त-अनन्त तत्त्व का पिण्ड है। उसके वेदन में, प्रतीति में, अनुभव में आया नहीं... आहाहा! और दीक्षा-चारित्र हो गया। भाई! ऐसा नहीं होता। उसमें ठगा जाएगा और फिर ऐसा काल मिलना मुश्किल है। भाई! आहाहा! पहले सम्यक्त्व क्या चीज़ है, उसे तो समझ। पहले तो यह करना है। आहाहा!

भरत चक्रवर्ती के घर में छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, छियानवें करोड़ सैनिक थे, छियानवें करोड़ गाँव थे। तथापि सम्यग्दर्शन अन्दर पूर्णानन्द का नाथ अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी अनुभव की दृष्टि थी। छियानवें हजार स्त्रियाँ उसके घर में रहो। राजपाट में बैठे। इन्द्र जिनके मित्र थे। भरत चक्रवर्ती ऋषभदेव का पुत्र। जिन्हें इन्द्र मित्र। कोई मेरे नहीं। मैं कहीं नहीं। यह सिंहासन में मैं नहीं, इन्द्रों के मित्रों में मैं नहीं, मैं विकल्प में नहीं। आहाहा! मैं तो मेरे शान्त द्रव्य-गुण और पर्याय निर्मल है, उसमें हूँ। आहाहा! समझ में आया?

**अनन्तानन्त ज्ञान-वीर्यमय है। मुक्त अवस्था में ( मोक्ष में ), उसकी स्थिति अचल है;...** मुक्तदशा होने पर उसकी स्थिति अचल हो जाती है। अर्थात् क्या कहा? कि जो द्रव्य और गुण अचल है, ऐसा उसका वेदन जहाँ अन्दर पूर्ण हो गया, वह भी अब कायम रहेगा। आहाहा! यह तो घड़ीक में बड़ा राजा और घड़ीक में नरक-नारकी। यहाँ

बड़ा राजा (हो)। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। जिसके घर में ३२ हजार राजा चँवर ढोलते थे, जिसे सोलह हजार देव जिसकी सेवा करते थे। आहाहा! जिसे हीरा-रतन के... क्या कहलाते हैं वह? पलंग-पलंग। हीरा-रतन के पलंग में-शैय्या में सोता था। वह मरकर देह छूटा, सातवें नरक में गया। अभी सातवें नरक मैं है रव-रव नरक है। वहाँ अभी है। अभी तो थोड़े वर्ष हुए। अभी तो असंख्य-असंख्य अरबों वर्ष रहनेवाला है। आहाहा! ७०० वर्ष का चक्रवर्ती (पद)। ७०० वर्ष में बालपने में कहाँ था चक्रवर्ती? थोड़े वर्ष पद रहा ७०० वर्ष में। उसमें ३३ सागर की स्थिति रव-रव नरक में। सातवें नरक में। आहाहा! जिसमें एक श्वास में... पल्योपम कितना,यह हमारे... भाई कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ग्यारह हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम। सोहनलालजी! ऐसा आया है न? याद करते हैं। सात सौ वर्ष है न सात सौ? वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुए न? ७०० वर्ष रहा चक्रवर्ती। तो ७०० वर्ष के एक श्वास। एक श्वास। एक श्वास के फल में कितने कहे? ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम का दुःख। पल्योपम के एक पल्य में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसे ग्यारह लाख पल्योपम। ओहोहो! समझ में आया? एक श्वास यहाँ भोगा (सुख)-कल्पना का। उसके फल में सातवें नरक में रव-रव नरक में जाता है। पलंग से जहाँ ऐसे देह छूटा वैसे वहाँ। लोहे के तौलने का गोला पानी पर रखो तो नीचे जाता है। ... है? इसी प्रकार महापाप मिथ्यात्व के, अज्ञान के किये हुए। आहाहा! यह चौरासी लाख के अवतार में गहरा सातवें नरक में गया। यहाँ देखो तो देव सेवा करे। आहाहा! जिसके एक (मुख्य) रानी की हजारों देव सेवा करे। रानी रत्न... होती है। दूसरी रानियाँ छियानवें हजार। आहाहा!

अरे! इसने एक श्वास में सुख की कल्पना वेदन की, उसके फल में ग्यारह लाख पल्योपम का दुःख। पोपटभाई! भारी कठिन बातें, बापू! भारी कठिन काम। यहाँ तो जरा कुछ ठीक मिले उसमें... आहाहा! मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? मेरा ठिकाना कहाँ होगा? इसे खबर नहीं होती। आहाहा!

कहते हैं, जिसे यह आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अनुभव स्थिति स्वसंवेदन

दशा प्रगटी और पूर्ण हुई, वह तो शाश्वत अचल रहेगा। जैसा द्रव्य अचल, गुण अचल, वैसी दशा अचल रहेगी। आहाहा! **वहाँ से ( मुक्ति से ) उसका कभी भी पतन नहीं होता अर्थात् जीव, मुक्त होने के पश्चात् फिर कभी भी संसार में नहीं आता। योग और सांख्यमतवालों की मान्यता इससे भिन्न है।** वह सांख्यवाला फिर से वहाँ से आवे, नीचे उतरे, (ऐसा मानते हैं)। अरे! चना जो सिंकता है, वह फिर से उगता नहीं। यह चना नहीं होते? चना समझते हो? दालिया होती है न? सेंक डाला भूँज डाले, फिर वापस उगेंगे? एक बार अज्ञान और राग-द्वेष का नाश कर दिया और आनन्द की दशा जहाँ पूर्ण प्रगट हुई, उसे फिर से अवतार नहीं होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)